मंगल-कामना

१.५

श्रावणी
के
वैदिक पर्व
पर
मंगलमय
भगवान
से
प्राणी मात्र
के लिये
हमारी
मंगल-कामना।



प्रतापसिंह शूरजी वल्लभदास
प्रधान
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली-१

प्रकाशवीर शास्त्री
संसद्-सदस्य



फोन : ४८७०६
१, केनिंग लेन,
नई दिल्ली

दिनांक ४ अगस्त, ६६

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप सार्वदेशिक (साप्ताहिक) का "वेद-कथा विशेषांक" प्रकाशित कर रहे हैं।

पराधीन भारत में वैदिक साहित्य और संस्कृत फिर भी किसी प्रकार जीवित थी परन्तु स्वतन्त्र होने के बाद तो सर्वथा ही उसकी उपेक्षा हो गई। ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र में कभी इस देश ने संसार को जो अनुपम देन दी थी वह अब स्वप्न की सी बात समझी जाने लगी है। जर्मनी में आज भी वेदों और उनसे सम्बन्धित ग्रन्थों पर ऊंचे अध्ययन चल रहे हैं। संस्कृत भाषा के लिए भी वहां के विश्वविद्यालयों में अध्ययन और अध्यापन की अच्छी व्यवस्था है। परन्तु दुर्भाग्य से जिनकी यह अपनी सम्पत्ति है वह आज पश्चिमी प्रवाह में बहकर उससे बहुत दूर होते जा रहे हैं। आशा है आपका यह विशेषांक इस दिशा में भी देश का मार्ग-दर्शन करेगा।

भवदीय
प्रकाशवीर शास्त्री

॥ ओ३म् ॥

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

महर्षि दयानन्द भवन, नई दिल्ली

सम्पूर्ण आर्य जगत् का

प्रतिनिधित्व करती है

वेद प्रचार, शिक्षाप्रसार, गो-रक्षा, मद्यमांसादि निषेध, अराष्ट्रीय तत्त्वों का निरोध आदि सभा के मुख्य कार्य हैं।

सभा राष्ट्र रक्षा के लिए दृढ़-संकल्प एवं राष्ट्र की जागरूक प्रहरी है।

सभा को शक्ति-सम्पन्न बनाने में तन-मन-धन से आप अपना योगदान देते रहें।

रामगोपाल शालवाले

सभा मन्त्री

बम्बई निवासी दानवीर

श्री सेठ बद्रीप्रसादजी भोरुका

द्वारा प्रदत्त

सात्विक धन से

३५०० विशिष्ट भद्र जनों

की सेवा में

वेद कथा विशेषांक

प्रेषित किया गया है।

हार्दिक धन्यवाद के साथ

रामगोपाल

सभा मन्त्री



विषय-सूची

❀ ओ३म् ❀

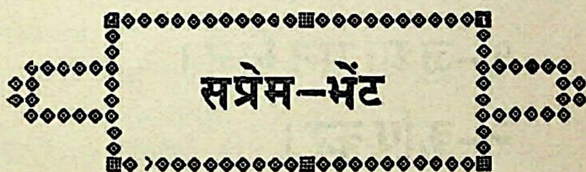
आर्य जाति के पुण्य पर्व

श्रावणी वेद-सप्ताह

के अवसर पर प्रकाशित

वेद कथा विशेषांक

आपकी पवित्र सेवा में



कृपया स्वीकार करें।

रामगोपाल शालवाले,
मन्त्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,
महर्षि दयानन्द भवन, नई दिल्ली-१

वेद के पांच आदेश–

अक्षैर्मा दिव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः । तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे विचष्टे सवितायमर्यः ॥

ऋ० १०-३४-१३

१–जुआ मत खेल।

२–कृषि कर।

३–अपने धन पर ही सन्तोष कर।

४--गौओं का पालन कर।

५--पत्नीव्रत रह।

॥ ओ३म् ॥

※ वाचं वदत भद्रया ※

सम्पादकीय—

शृण्वन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्राः

'शृण्वन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्राः'—हे अमृत के पुत्रों, सब के सब सुनो।

यह है वेद का मानव-जाति के लिए सम्बोधन। कैसा विचित्र और पवित्र है यह सम्बोधन! सभाओं में भाषण देने से पहले जैसे आम तौर पर प्रत्येक वक्ता कहा करता है— 'भाइयो और बहनो' या 'लेडीज एण्ड जैण्टिलमैन' –यह वैसा सम्बोधन नहीं है। न ही इस सम्बोधन में 'समस्त हिन्दुओ, सुनो!' या 'समस्त भारतवासियो, सुनो!' वाली बात है। यह सम्बोधन न अपनी जाति-बिरादरी वालों के लिए है, न ही हम-मजहब वालों के लिए है, न ही हम-वतन लोगों के लिए। आज सारा संसार विभिन्न धर्मों, विभिन्न देशों, विभिन्न गुटों, विभिन्न जातियों और विभिन्न विचारधाराओं में बंटा हुआ है। परन्तु आश्चर्य है कि वेद की दृष्टि से न कोई ऐतिहासिक सीमा है, न ही भौगोलिक सीमा है, न ही राजनीतिक सीमा है और न ही साम्प्रदायिक सीमा है। ये सब सीमाएं तो मानवकृत हैं। वेद इन सब सीमाओं से ऊपर है। उसके लिए समग्र मनुष्य-जाति एक इकाई है। इसीलिए 'शृण्वन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्राः' कह कर मानवता की इस एक इकाई को ही एक साथ सम्बोधन किया गया है।

साथ में विशेषण है—अमृतस्य पुत्राः –अर्थात सारी मानव-

जाति अमृत पुत्र है, यह अमरता की सन्तान है, या अक्षय आनन्द के स्रोत, सच्चिदानन्दस्वरूप, अमृतधाम (मोक्षपद) के अधीश्वर परमपिता परमात्मा की सन्तान है। केवल हजरत ईसा मसीह ही खुदा का बेटा नहीं है, परन्तु वेद की दृष्टि में सभी खुदा के बेटे हैं, उसी परमपिता के पुत्र हैं।

अरे, अमरपिता की सन्तान यह मरणधर्मा मनुष्य ! कैसा विचित्र विरोधाभास है ? रवि बाबू ने अपनी विश्व-प्रसिद्ध 'गीताञ्जलि' नामक ग्रन्थ इसी भाव से आरम्भ किया है : Thou hast made me immortal"—तूने मुझे अमर बनाया है परन्तु मैं अमर कहां रहा ? मैं तो मृत्यु की शरण में चला गया—आवागमन के चक्कर में फंस गया। कोई बात नहीं। मैं एकबार एक श्रेणी में फेल होगया तो कोई चिंता नहीं। मेरे पिता ने मुझे स्कूल में फेल होने के लिए नहीं भेजा था। मैं अगली बार उत्तीर्ण होकर दिखाऊंगा। परमपिता परमात्मा ने भी मानव जाति को संसार में अनुत्तीर्ण होने के लिए या आवागमन के चक्कर में फंसने के लिए नहीं भेजा है। वह तो चाहता है कि मेरे पुत्र इन पापयोनि, कर्मयोनि और भोगयोनिस्वरूप नाना योनियों में जन्म जन्मान्तरों के चक्र से छूटकर वापिस मेरी गोद में आ जाएं, मोक्ष प्राप्त करें, अमृत लाभ करें। पिता और पुत्रों का मेल हो जाए। परन्तु मानव अपनी साधना की कमी के कारण बारम्बार अनुत्तीर्ण हो जाता है, वहां तक पहुंच नहीं पाता। जैसे घुटनों के बल रेंगता बच्चा बारम्बार खड़ा होने का यत्न करता है और गिर पड़ता है। परन्तु लगातार प्रयत्न करते रहने पर प्रत्येक बालक जैसे एक दिन खड़ा होना सीख जाता है, वैसे ही एक दिन मानव को भी आवागमन के चक्र से छूटना है—शर्त यह है कि वह लगातार प्रयत्न करता रहे। इसी में मानव जीवन का साफल्य है। मोक्ष ही मानव का लक्ष्य है।

'अमृतस्य पुत्राः' शब्द से यही अर्थ ध्वनित होता है। इसी लिए हमने वेद के उक्त सम्बोधन को 'विचित्र और पवित्र सम्बोधन' की संज्ञा दी है।

समस्त भारतीय वाङ्मय में मानव जीवन का लक्ष्य-मोक्ष-जो कहा गया है सो अकारण नहीं है। वेद, उपवेद, वेदांग और उपांग इन श्रेणियों में विभक्त जितना भी साहित्य है, उस सबमें, और तो और नितरां लौकिक और ललित साहित्य में भी मानव-जीवन का लक्ष्य मोक्ष को ही बताने में भी मानव-जीवन का लक्ष्य मोक्ष को ही बताने की प्रवृत्ति वेद की उसी भावना का द्योतक है। और कोई लक्ष्य मानव-जीवन का हो नहीं सकता।

मंजिल निर्दिष्ट हो गई, वह है मोक्ष। फिर मंजिल तक पहुंचने का मार्ग? बड़ा बीहड़ है। मानव-जीवन भी क्या कम जटिल है? जिस दिन मनुष्य इस संसार में आंख खोलता है, तब से लेकर जिस दिन आंखें बन्द करता है, तब तक हाय! हाय!! रात दिन रोना ही रोना। आद्यशैशव में मां के दूध के लिए, बचपन में खिलौनों के लिए, किशोरावस्था में स्कूल की परीक्षा पास करने के लिए, जवानी में नौकरी के लिए, पत्नी के लिए, पुत्र के लिए धन-प्राप्ति के लिए, अधेड़ अवस्था में यश के लिए जन्म भर अहर्निश यही रोना चलता रहता है। कुछ शरीर की आवश्यकताएं हैं,कुछ मन और बुद्धि की आवश्यकताएं हैं। जिनकी पूर्ति के लिए मनुष्य सदा प्रयत्न करता रहता है। शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अर्थ चाहिए। रोटी, कपड़ा और मकान तथा समस्त जीवनीय सांसारिक पदार्थ इस अर्थ में समा जाते हैं। मन की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए काम चाहिए—स्त्री-पुत्र-पौत्रादि गृहस्थी के समस्त बंधन इसी काम के विस्तार हैं। बुद्धि के लिए ज्ञान चाहिए—'बुद्धि-

ज्ञानेन शुध्यति' बिना ज्ञान-विज्ञान के बुद्धि की तृप्ति नहीं होती। आत्मा के लिए मोक्ष चाहिए—वह तो मंजिल है ही।

इसीलिए वेद की दृष्टि में मानव जीवन के चार पुरुषार्थ हैं। पुरुषार्थ अर्थात पुरुष का प्रयोजन—ऐसा प्रयोजन जिसके बिना मानव जीवन चल नहीं सकता। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये ही चार पुरुषार्थ हैं। पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा—सब इन चारों पुरुषार्थों में आ जाती हैं। ज्ञान,मान, रति आदि मानव-जीवन की समस्त मूल प्रवृत्तियां, जिन्हें आज का पाश्चात्य मनोविज्ञान भी अस्वीकार नहीं कर सकता—पुरुषार्थ-चतुष्टय में परिगणित अर्थ और काम में आ जाती हैं? फ्रायडीय मनोविज्ञान जिस 'सेक्स' पर इतना जोर देता है क्या वह काम से भिन्न है? और जिसे मनोवैज्ञानिक गण जीवनेच्छा कहते हैं, वह भी अर्थ से भिन्न नहीं है।

परन्तु पाश्चात्य मनोविज्ञान के पीछे चल कर यदि अर्थ और काम को ही सारे जीवन की बागडोर सौंप दी जाए, पुरुषार्थ चतुष्टय में से धर्म और मोक्ष को निकाल दिया जाए, तो 'शुतुर बेमुहार' की तरह मानव जीवन की गाड़ी किस अज्ञात-अथाह गर्त में गिरेगी—इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। इसका कुछ थोड़ा-सा आभास पाना हो तो अपने चारों ओर की दुनिया पर क्षण भर के लिए दृष्टिपात कर लीजिए। यह भ्रष्टाचार, यह चोर बाजारी, यह रिश्वतखोरी, यह युद्धों की तैयारी, शस्त्रास्त्रों का और मानव जाति-विध्वंसक अणुबमों का संग्रह, यह जीवन की अशान्ति, ये नाना आधियां और नित नई व्याधियां,—ये सब अर्थ और काम का विस्तार और विलास-मात्र है! यदि धर्म और मोक्ष का अंकुश न रहे तो निरे अर्थ और काम तो 'शिश्नोदरवाद' के पर्यायवाची ही हैं।

शिश्नोदरवाद आसुरी, अनार्य और अवैदिक संस्कृति है। धर्मशून्य अर्थ और धर्मशून्य काम कभी मंजिल (मोक्ष) तक नहीं पहुंचा सकते, बीच धार में ही डुबोयेंगे। आज के संसार की यही स्थिति है। चारों ओर का अनवरत हाहाकार बीच धार में डूबने वाली मानव जाति का आर्तनाद ही है, और कुछ नहीं। डूबता मानव पुकार रहा है -'बचाओ, बचाओ।' परन्तु वेद के सिवाय अन्य किसी में यह शक्ति नहीं जो इस डूबते मानव को बचा सके। क्योंकि अन्य सब मत-मतान्तर, धर्म ग्रन्थ या पीर-पैगम्बर ईमान पर जोर देते हैं, धर्म अर्थात् कर्तव्य पर नहीं, और मोक्ष की कल्पना तो उनके सामने है ही नहीं। वे जैसे निरुद्देश्य चल रहे हैं--कहां जाना है, यह पता नहीं, बस चल रहे हैं, इतना मालूम है।

वैदिक धर्म की दृष्टि से अर्थ और काम हेय नहीं हैं, जीवन में उनका भी स्थान है। उनके बिना शरीर और मन की आवश्यकताएं पूरी नहीं होतीं। परन्तु वे अर्थ और काम निरंकुश और निरुद्देश्य नहीं हैं। उन पर धर्म का अंकुश है और मोक्ष उनका उद्देश्य है। संक्षेपतः हम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के पुरुषार्थ-चतुष्टय को गणित के सूत्र रूप में यों कह सकते हैं—

धर्म (अर्थ+काम)=मोक्ष।

— अर्थात् अर्थ और काम दोनों की जोड़ी है, परन्तु यह जोड़ी कोष्ठक के अन्तर्गत अर्थात् अंकुश में रहनी चाहिए। धर्म कोष्ठक के बाहर है, क्योंकि उस पर किसी अंकुश की आवश्यकता नहीं। इस धर्म का अर्थ के साथ भी गुणा होगा और काम के साथ भी। अर्थात् धर्मपूर्वक अर्थ और धर्मपूर्वक काम ही मोक्ष की मंजिल तक पहुंचाने में सहायक हो सकते हैं, धर्म से विरहित होकर नहीं।

वैदिक धर्म की दृष्टि से यह है मानव-जीवन का प्रयोजन, पुरुष का प्रयोजन, पुरुषार्थ। यही है मानव जीवन की परिभाषा। इससे अधिक परिपूर्ण, सर्वग्राह्य और श्रेयस्कर मानव जीवन की और कोई परिभाषा हो नहीं सकती। आप पूछेंगे, वेद में क्या है ? हम कहते हैं कि वेद में इन्हीं चारों पुरुषार्थों का प्रतिपादन है। धर्म और मोक्ष के साथ अर्थ और काम भी वेद की दृष्टि में हेय या नगण्य नहीं हैं, उनका भी खूब वर्णन है, परन्तु "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा:" कह कर उन पर अंकुश लगा दिया गया है।

अर्थ और काम की प्राप्ति के लिए संसार के पदार्थों का ज्ञान आवश्यक है, क्योंकि पदार्थों के गुण-दोष की जानकारी के बिना उनका उपयोग सम्भव नहीं। पदार्थों के गुण-दोषों का ज्ञान ही आयुर्वेद है—आयु को बढ़ाने वाला ज्ञान है। रसायन, भौतिकी, शरीरशास्त्र, जीव-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान, अस्थि-विज्ञान, आकृति-विज्ञान आदि विज्ञान की समस्त शाखाएं इसी आयुर्वेद के अन्दर आ जाती हैं।

संसार के पदार्थों के ज्ञान के लिए आवश्यक है कि हम सृष्टि की उत्पत्ति के नियमों को जानें। जिन नियमों के आधार पर सृष्टि का निर्माण हुआ है, सृष्टि के समस्त पदार्थ उन्हीं नियमों के अनुसार गति करते हैं। सृष्टि के नियमों की जानकारी का अर्थ है सृष्टि-विज्ञान की जानकारी। सृष्टि-विज्ञान है—कास्मौलौजी (Cosmology)। इसका भी वेद में प्रचुरता से वर्णन है। सृष्टि-विज्ञान की व्याख्या के लिए ही प्राच्य और पाश्चात्य दर्शनशास्त्रों का निर्माण हुआ है। जैसे आयुर्वेद के रूप में समस्त भौतिक विज्ञानों का आधार वेद है, वैसे ही सृष्टि-विज्ञान के रूप में समस्त दर्शनों का मूल भी वेद ही है।

अर्थ और काम की प्राप्ति के लिए जैसे सृष्टि के पदार्थों का ज्ञान आवश्यक है और इन पदार्थों के ज्ञान के लिए सृष्टि के नियमों का ज्ञान आवश्यक है, वैसे ही सृष्टि के नियमों के ज्ञान के पश्चात् इस सृष्टि के निर्माता—परमात्मा का ज्ञान भी आवश्यक है, क्योंकि बिना नियामक के नियम नहीं रह सकता। इस अनन्त ब्रह्माण्ड रूपी विशाल संयन्त्र को यन्त्राधिपति ने अपने कौशल से चालू रखा है, क्या उसकी उपेक्षा की जा सकती है? "अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति"—वह यन्त्राधिपति इस कारखाने में बने सामान का स्वयं उपभोग नहीं करता, परन्तु कण-कण में छिपी उस 'सहस्रचक्षुः' की आंख प्रति क्षण इस बात की निगरानी रखती रहती है कि यह कारख़ाना ठीक चल रहा है या नहीं?

जब उस यन्त्राधिपति ईश्वर के गुणों को जानकर अल्पज्ञ और कर्म तथा भोग के बन्धन में बंधा जीव उससे साक्षात्कार करने और मिलने को आतुर हो उठता है, प्राणायाम के माध्यम से ध्यान, धारणा और समाधिपरक योग के द्वारा साक्षात्कार की समस्त आवश्यक शर्तें पूरी कर लेता है, तब आत्मा और परमात्मा का मेल हो जाता है, आवागमन का चक्र छूट जाता है, मोक्ष मिल जाता है।

इस प्रकार पुरुषार्थ-चतुष्टय की सम्यक् साधना के लिए वेद से बढ़ कर अन्य कोई मार्ग-दर्शक नहीं हो सकता। यही वेद का वेदत्व है, यही मानव जाति के लिए उसकी उपयोगिता है। यही कारण है कि वेद किसी भी देश और काल की सीमा में नहीं आता, वह सम्प्रदायातीत है, इतिहास और भूगोल की सीमाएं उसे नहीं बांधतीं। जो सार्वत्रिक और सार्वकालिक सत्य है, शाश्वत और सनातन सत्य है, उसके लिए देश और

काल की अपेक्षा नहीं। निश्चय ही मानव जाति का यह संविधान मानव जाति के उदय के साथ ही प्रारम्भ होना चाहिए। वह राजा कैसा जो बिना किसी संविधान के प्रजा के पालन की बागडोर अपने हाथ में संभाल ले ? वह निरंकुश और स्वेच्छाचारी तानाशाह हो सकता है, न्यायकारी राजा नहीं। वेद उसी न्यायकारी राजा का सृष्टि के आदि में अपनी प्रजा के लिए दिया संविधान है।

और जैसे उस ईश्वर का बनाया सूर्य सबके लिए है, पवन सबके लिए है, जल सबके लिए है, पृथ्वी सबके लिए है, आसमान और तारे सबके लिए हैं, बादल और वर्षा सबके लिए हैं, वृक्ष और वनस्पति सबके लिए हैं, उनमें हिन्दू-मुसलमान या यहूदी-ईसाई का भेद-भाव नहीं है, वैसे ही वेद भी सबके लिए हैं। सूर्य, चन्द्र, जल, पवन, गगन जैसे 'सेक्यूलर' है, वैसे ही वेद भी सेक्यूलर है।

इसी लिए वेद ने नदी-पर्वत, देश-विदेश और अर्वाचीन-प्राचीन की सब बाधाओं को लांघ कर मानव जाति को एक इकाई के रूप में सम्बोधन किया है—"शृण्वन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्राः"—सुनो रे अमृत के पुत्रो, समस्त विश्व के नागरिको, सुनो ! सब के सब सुनो !"

आर्य समाज परिचयांक

के प्रकाशित करने का पूरा निश्चय किया है। जिन आर्य संस्थाओं ने अभी तक भी परिचय नहीं भेजे वे महानुभाव सितम्बर के अन्तिम सप्ताह तक भेज दें इसके पश्चात् नहीं।

—प्रबन्धक

यह अंक

ऊपर हमने अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार वेद के वेदत्व, उसकी महिमा तथा सर्वजनोपयोगिता पर किञ्चित् प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। इस अंक में हमने चारों वेदों के कुछ सूक्तों का भाष्य दिया है। भाष्य भी किसी एक व्यक्ति का न होकर अनेक व्यक्तियों का है। महर्षि दयानन्द से लेकर पं० तुलसी राम और पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी तक का भाष्य हमने प्रस्तुत किया है। ऐसा इसलिए कि विभिन्न विद्वानों द्वारा अपनाई गई विभिन्न शैलियों का परिचय पाठकों को हो सके। केवल अंग्रेजी जानने वाले महानुभावों की खातिर हमने कुछ मन्त्रों का स्वर्गीय पं० अयोध्या प्रसाद जी वैदिक अनुसन्धानाकार द्वारा रचित भाष्य दिया है।

इन भाष्यों को पढ़ने से पाठकों को वेद की महिमा का और उपयोगिता का थोड़ा-सा भी भान हो जाए और वेद के स्वाध्याय के प्रति रुचि जागृत हो जाए, तो हम अपने इस तुच्छ प्रयत्न को सार्थक समझेंगे।

आर्य जनों का कर्तव्य है कि वे इस अंक को अधिक से अधिक हाथों तक और अधिक से अधिक पाठकों तक पहुंचाने का प्रयत्न करें। हमने यह सुन्दर, सुस्वादु, पथ्य और हितकारी मानसिक भोजन पाठकों के समक्ष परोस दिया है, आप अकेले न खाकर अधिक से अधिक लोगों की मानसिक भूख इससे शान्त करें, यही प्रार्थना है, क्योंकि वेद का ही उपदेश है—'केवलाघो भवति केवलादी'—अकेला खाने वाला पाप खाता है।



छः शत्रुओं से बचो—

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥
अ० ८।४।२२ ॥

१. उल्लू के समान आचरण अर्थात् मूर्खता का व्यवहार,
२. भेड़ियों के समान क्रूरता,
३. कुत्ते की वृत्ति अर्थात् परस्पर लड़ना और दूसरों के सामने दुम हिलाना,
४. चिड़िया के समान अत्यन्त काम-विकार,
५. गरुड़ के समान आचरण अर्थात् घमण्ड, अहंकार आदि,
६. गीध के समान लोभ,

—इन छः को दूर करो और इनसे सबको बचाओ ।

वेद-मन्त्रों में 'स्वराज्य' और उसकी 'सुरक्षा'

पद्मश्री डा० हरिशंकर जी शर्मा डी-लिट्

पृथिवी अखण्ड है, खण्ड-खण्ड मत करना,
वन स्नेह शील अति भद्र भावना भरना।
भूतल के सभी निवासी भाई-भाई,
वसुधा कुटुम्ब फिर क्यों हों युद्ध-लड़ाई।

दुर्भाव-दम्भ हो नष्ट, स्वार्थ का क्षय हो,
'मानवता' का अनुपम आदर्श उदय हो।
भव आधि-व्याधि संकट से नित निर्भय हो,
हो विश्व शान्तिमय, मातृ-भूमि की जय हो।

आज हम 'स्वराज्य' में रह रहे हैं। यह 'स्वराज्य' हमें सत्य-अहिंसा एवं तप-त्याग के आधार पर प्राप्त हुआ है। सत्य एवं अहिंसा के पालन में जो कष्ट सहने पड़े वह 'तप' और जो कुछ छोड़ना पड़ा वही त्याग है। 'स्वराज्य' होते ही हमारी 'शासन-सत्ता' 'धर्म्म-निरपेक्ष' होगयी! अर्थात् जिस धर्म्म-'सत्य-अहिंसा' एवं 'तप-त्याग' द्वारा, 'स्वराज्य' प्राप्त हुआ था, उस की ओर से सत्ताधारी 'निरपेक्ष' होगये! विश्व वन्द्य महात्मा गांधी के निम्नलिखित शब्दों को भुला दिया।

"मेरे नजदीक धर्म्म हीन राजनीति कोई चीज नहीं। धर्म्म के मानी वहमों और गतानुगतिकता का धर्म्म नहीं है। द्वेष करने वाला और लड़ने वाला धर्म्म नहीं-बल्कि विश्वव्यापी सहिष्णुता का धर्म्म। मैं धर्म्म से भिन्न राजनीति की कल्पना भी नहीं कर सकता। वास्तव में धर्म्म तो हमारे हर काम में व्यापक होना चाहिए। धर्म्म का अर्थ

कट्टर पंथ नहीं। उसका अर्थ है—विश्व की राजनैतिक सुव्यवस्था। बाहर की अपेक्षा भीतरी पवित्रता की ज्यादा जरूरत है। चरित्र के विना सारा ज्ञान बुराइयों की जड़ है। नीति, सदाचार और धर्म्म एक ही बात है। इसके विना जीवन बालू पर खड़े किये गये मकान की तरह है।"

एक ओर तो महात्मा गांधी के उपर्युक्त शब्द दूसरी ओर शासन सत्ता की 'धर्म्म निरपेक्षता'! कितने आश्चर्य और कैसे खेद की बात है।

वेद-मन्त्रों में भी 'स्वराज्य' एवं स्वराज्य-रक्षा की ओर संकेत किया गया है। नीचे लिखे मन्त्रों को पढ़िए और उनके भावों को समझिए।

आयद् वामीय चक्षसा मित्र वयंच सूरयः व्यचिष्ठे-बहु पाय्ये यते महि स्वराज्ये।

ऋग्वेद ५-६६-६

'स्वराज्य' के लिये मित्र-दृष्टि वाले लोग, विस्तृत दृष्टि वाले लोग और ज्ञानी लोग योग्य होते हैं। झगड़ने वाले, संकुचित दृष्टि वाले और अज्ञानी नहीं।

इत्थाहि सोम इन्मेद ब्रह्माचकार वर्द्धनम्। शविष्ठ प्रज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शसा अहि मर्चन्ननु स्वराज्यम्॥

ऋग्वेद १-८०-१

ज्ञानी सुविचारों का संवर्द्धन करें। शस्त्र-धर अथवा बलवान शत्रुओं को नष्ट करें और सब मिलकर 'स्वराज्य' का महत्त्व बढ़ावें।

यदजः प्रथमं संबभूव सहतत् स्वराज्य मियाय।

अथर्व० १०-७-३१

जो अग्रभाग में जाता है, जो संचालन करता है, जो आगे बढ़ने के लिये हलचल करता है जो अन्यों का मार्ग-दर्शक होकर उनको आगे बढ़ाता है, वही स्वराज्य-रक्षा करता है।

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदेवी लू उत प्रतिष्कभे, युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः।

ऋ० १-३९-२

अपने शस्त्रास्त्र शत्रुओं से बढ़कर और अधिक कार्य-क्षम होने से ही अपना विजय होता है। इसलिये इस विषय में दक्षता धारण करनी चाहिए कि अपने शत्रु के बल की अपेक्षा सब प्रकार से अपना बल अधिक हो।

ज्या घोषा दुंदभयोऽभि क्रोशन्तु या दिशः। स्तेनाः पराजिता यतीरमित्राणा मनीकशः। अथर्व ५-२१-९

अपने सैन्य से ऐसा पराक्रम हो कि जिससे शत्रु का पूर्ण पराजय हो और सेना विभाग ही घबरा कर भाग जाए।

एता देव सेनाः केतवः सचेतसः। अमित्रान् नो जयन्तु स्वाहा॥ अथर्व ५-२१-१२

हमारी सेना शान्तचित्त से उचित पराक्रम करती हुई शत्रु का पूर्ण पराजय करे। शत्रु का पूर्ण पराजय करने के लिये ही हम अपने सर्वस्व की आहुति देते हैं। जिस समय सब लोग शत्रु का संहार करने के लिये सब कुछ समर्पण करेंगे, उसी समय विजय प्राप्त होगा।

असौ या सेना मरुतः परेषामस्मानैत्य भ्योजसा स्पर्धमाना। ता विध्यत तमसापव्रतेन यथैषा मन्यो अन्यं न जानात्॥ अथर्वं० ३-२-६

शत्रु की सेना जिस समय अपने ऊपर चढ़ाई करके आ रही हो, उस समय शत्रु पर धूमास्त्र फेंक कर, उसकी ऐसी अवस्था करनी चाहिए कि उसके सैनिकों में से कोई एक दूसरे को न जान सके। इस प्रकार शत्रु का पराभव करना चाहिए।

मूढ़ा अमित्रा न्युर्बुदे जह्येषां वरं वरम् अनया जीह सेनया। अथर्व० ११-१०-१२

शत्रु के साथ ऐसा युद्ध करना चाहिए कि शत्रु पागल बन जाए। अर्थात् उसका सिर ठिकाने पर न रहे। शत्रु के वीरों में से चुन चुनकर मुखियाओं को मार दे।

विहृदयं वैमनस्यं वदामित्रेषु दुंदुभे। विद्वेषं कश्मशं भयम मित्रेषु निदध्मस्य वैनान्दुन्दुभे जहि॥

अथर्व० ५-२१-१

ऐसी अवस्था करनी चाहिए जिससे शत्रु-सैन्य में फूट, आपस में वैर-वैमनस्य, व्याकुलता, कष्ट, दुःख और भय उत्पन्न हो। यही भेद-नीति है—इससे अपना विजय होता है।

उपर्युक्त वेद-मन्त्रों तथा उनके भावार्थों से यह भली भांति ज्ञात होता है कि वेदों में 'स्वराज्य' का स्वरूप बड़ी सुन्दरता से वर्णन किया गया है और 'स्वराज्य' को नष्ट करने वालों को नष्ट करने तथा उनकी कुचेष्टा का ध्वंस करने की विधि भी बतलाई है। मैं तो वेदों का ज्ञाता नहीं, मैंने ये मन्त्र और उनके भाव सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वानों की विद्वत्ता-पूर्ण पुस्तकों से लिये हैं।



हमारा प्यारा वेद

डा० सूर्यदेव शर्मा एम. ए. डी. लिट् , अजमेर

(भुजंगप्रयात वृत)

(१)

जिसे ब्रह्मचारी सुसर्वस्व जानें।
गृहस्थी गृहों में गहें मुख्य मानें॥
वनों में बसे वानप्रस्थी बखानें।
सुशिक्षा सुधा से स्वसंन्यास सानें॥
अखंडाश्रमों का अनूठा अटारा।
बने वेद ही प्राण-प्यारा हमारा॥

(२)

विभा वर्चसी ब्राह्मणों का वही है।
रक्षा राजसी भी उसी में रही है॥
वही वैश्य वैभव्य की भी मही है।
वही शूद्र की सत्य सेवा सही है॥
वही विश्व वर्षायगा-वारि धारा।
बने वेद ही प्राण प्यारा हमारा॥

(३)

जहां भी रहें, वेद का गान गावें।
पढ़ें वा पढ़ावें, सुनें वा सुनावें॥
सुधी को सुकर्मण्यता में लगावें।
बनें विश्व को आर्य सच्चा बनावें॥
यही आर्य आदर्श व्रत पूर्ण धारा।
बने वेद ही प्राण प्यारा हमारा॥

(४)

मरें वेद की ज्योति में लौ लगाते ।
ऋचा, मंत्र वा साम का गान गाते ॥
अजादेश सारा सभी को सुनाते ।
करें प्रार्थना मृत्यु का मान पाते ॥
"प्रभो, मानवी योनि में जो उतारा ।
बने वेद ही प्राण प्यारा हमारा ॥"

(५)

कहीं जन्म लें, वेद के काम आवें ।
तभी जन्म साफल्य का लाभ पावें ॥
स्वयं व्यंज हो 'सूर्य' श्रेमाण ध्यावें ।
उसी से मनस्वी बनें, मोक्ष पावें ॥
वही मृत्यु-मंदाकिनी का किनारा ।
बने वेद ही प्राण प्यारा हमारा ॥

"सूर्य"

वैदिक-सूक्ति-संग्रह

असतो मा सद्गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय ।
मृत्योर्मा अमृतं गमय ॥ (यजु० १६ । ६)

हे प्रभो ! मुझे अज्ञान से ज्ञान की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो ।

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व । (ऋग्वेद १०म० अक्ष सूक्त)

जुआ मत खेलो, कृषि ही करो ।

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त संकिर ।

सौ हाथों से संग्रह करो और हजार हाथों से दान करो ।

अग्ने नय सुपथा राये । (यजु० ४०।१६)

हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् , हमें ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए अच्छे मार्ग से ले चलो ।

संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।

(सब मनुष्यों) तुम सब साथ चलो, साथ बोलो ! तुम्हारे मन साथ हों ।

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । (ऋक् ६।६३।५)

सारे संसार को आर्य बनाओ ।

पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः ।

मनुष्य मनुष्य की रक्षा करें ।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा ।
(अथर्व० ३।३०।३)

भाई भाई से द्वेष न करे और बहिन बहिन से द्वेष न करे ।

इन्द्रो विश्वस्य राजति।

ऐश्वर्यशाली प्रभु संसार का राजा है।

ईशावास्यमिदं सर्वम्। (यजु० ४०।१)

यह सब (संसार) ईश्वर से व्याप्त है।

प्रसुव यज्ञम्। (यजु० ३०।१)

यज्ञ की प्रेरणा करो।

यस्य च्छायाऽमृतम्।

जिस (प्रभु) की छाया (रक्षा) अमर बनाने वाली है।

स नो बन्धुः (यजु० ३२।१०)

वही (प्रभु) हमारा भाई-बन्धु है।

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।

भूमि मेरी माता है, मैं उसका पुत्र हूँ।

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति।

(अथर्व० ११।५।१७)

ब्रह्मचर्य से राजा राष्ट्र की रक्षा करता है।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।

(अथर्व० ११।५।१६)

ब्रह्मचर्य (और) तपस्या से देवों ने मृत्यु को मारा था।

उत्क्रामातः पुरुष। अथर्व० ८।१।४)

हे पुरुष, आगे बढ़ता चल।

यद् भद्रं तन्न आसुव। (यजु० ३०।३)

जो कल्याणकारक है उसे अपने पास करो।

संग्रह कर्त्ता

—देवव्रत धर्मेन्दु, आर्योपदेशक

वेदाध्ययन—

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्त्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥

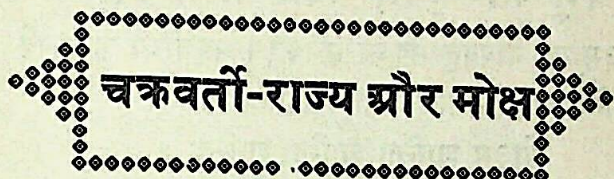
अथर्व० १९-७१-१

मन को शुभ प्रेरणा देने वाली, द्विजों को पवित्र करने वाली, श्रेष्ठ ज्ञानदात्री वेदमाता का अध्ययन करते हुए आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, ज्ञान तेज—आदि की वृद्धि करके मोक्ष को प्राप्त करो।

☆

* ओ३म् *

दो सुख—



चक्रवर्ती-राज्य और मोक्ष

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव॥

यजुर्वेदे। अध्याये ३०। मन्त्रः ३॥

हे सत्यस्वरूप! हे विज्ञानमय! हे सदानन्दस्वरूप! हे अनन्तसामर्थ्ययुक्त! हे परमकृपालो! हे अनन्तविद्यामय! हे विज्ञानविद्याप्रद! हे परमेश्वर! आप सूर्यादि सब जगत् का और विद्या का प्रकाश करने वाले हो तथा सब आनन्दों के देने वाले हो, हे सर्वजगदुत्पादक सर्वशक्तिमन्! आप सब जगत् को उत्पन्न करने वाले हो, हमारे सब जो दुःख हैं उनको और हमारे सब दुष्ट गुणों को कृपा से आप दूर कर दीजिये, अर्थात् हम से उनको और हमको उनसे सदा दूर रखिये, और जो सब दुःखों से रहित कल्याण है जो कि सब सुखों से युक्त भोग है, उसको हमारे लिये सब दिनों में प्राप्त कीजिये! सो सुख दो प्रकार का है—एक जो सत्यविद्या की प्राप्ति में अभ्युदय अर्थात् चक्रवर्त्ति राज्य इष्ट मित्र धन पुत्र स्त्री और शरीर से अत्यन्त उत्तम सुख का होना, और दूसरा जो निःश्रेयस सुख है कि जिसको मोक्ष कहते हैं और जिसमें ये दोनों सुख होते हैं उसी को भद्र कहते हैं, उस सुख को आप हमारे लिये सब प्रकार से प्राप्त करिये।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

प्रभु की कृपा, रक्षा और सहाय

ओ३म् सह नाववतु सह नौ भुनक्तु । सह वीर्य्यं करवावहै ।
तेजस्वि नावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

तैत्तिरीय आरण्यके । नवमप्रपाठके । प्रथमानुवाके ॥

हे सर्वशक्तिमन् ईश्वर ! आपकी कृपा, रक्षा और सहाय से हम लोग परस्पर एक दूसरे की रक्षा करें, और हम सब लोग परमप्रीति से मिल के सबसे उत्तम ऐश्वर्य अर्थात् चक्रवर्ति राज्य आदि सामग्री से आनन्द को आपके अनुग्रह से सदा भोगें, हे कृपानिधे ! आपके सहाय से हम लोग एक दूसरे के सामर्थ्य को पुरुषार्थ से सदा बढ़ाते रहें, और हे प्रकाशमय सब विद्या देने वाले परमेश्वर ! आपके सामर्थ्य से ही हम लोगों का पढ़ा और पढ़ाया सब संसार में प्रकाश को प्राप्त हो और हमारी विद्या सदा बढ़ती रहे, हे प्रीति के उत्पादक ! आप ऐसी कृपा कीजिये कि जिससे हम लोग परस्पर विरोध कभी न करें किन्तु एक-दूसरे के मित्र होके सदा वर्त्तें ।

हे भगवन् ! आपकी करुणा से हम लोगों के तीन ताप-- एक 'आध्यात्मिक' जो कि ज्वरादि रोगों से शरीर में पीड़ा होता है, दूसरा 'आधिभौतिक' जो दूसरे प्राणियों से होता है, और तीसरा 'आधिदैविक' जो कि मन और इन्द्रियों के विकार, अशुद्धि और चञ्चलता से क्लेश होता है, इन तीनों तापों को आप शान्त अर्थात् निवारण कर दीजिये, जिससे हम लोग सुख से वेदभाष्य को यथावत् बना के सब मनुष्यों का उपकार करें । यही आप से चाहते हैं, सो कृपा करके हम लोगों को सब दिनों के लिये सहाय कीजिये । —महर्षि दयानन्द सरस्वती

ईश्वर से सहायता

आज से ९०वर्ष पूर्व महर्षिदयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की रचना करते हुए आरम्भ में निम्न आठ श्लोकों द्वारा वेद भाष्य करने के लिए परमात्मा से सहायता की प्रार्थना की थी।

ब्रह्मानंन्तमनादि विश्वकृदजं सत्यं परं शाश्वतं,
विद्या यस्य सनातनी निगमभृद्वैधर्म्यविध्वंसिनी।
वेदाख्या विमला हिता हि जायते नृभ्यः सुभाग्यप्रदा,
तन्नत्वा निगमार्थभाष्यमतिना भाष्यं तु तन्तन्यते॥

जो ब्रह्म अनन्त आदि विशेषणों से युक्त है, जिसकी वेद विद्या सनातन है, उसको अत्यन्त प्रेम भक्ति से मैं नमस्कार करके इस वेदभाष्य के बनाने का आरम्भ करता हूं।

कालरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे भाद्रमासे सिते दले।
प्रतिपद्यादित्यवारे भाष्यारम्भः कृतो मया॥

विक्रम के सम्वत् १९३३ भाद्रमास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा, रविवार के दिन इस वेदभाष्य का आरम्भ मैंने किया है।

दयाया आनन्दो विलसति परः स्वात्मविदितः,
सरस्वत्यस्याग्रे निवसति हिता हीशशरणा।
इयं ख्यातिर्यस्य प्रततसुगुणा वेदमनना-
स्त्यनेनेदं भाष्यं रचितमिति बोद्धव्यमनघाः॥

सब सज्जन लोगों को यह बात विदित हो कि जिनका नाम स्वामी दयानन्द सरस्वती है उन्होंने इस वेदभाष्य को रचा है।

मनुष्येभ्यो हितायैव सत्यार्थं सत्यमानतः।
ईश्वरानुग्रहेणेदं वेदभाष्यं विधीयते॥

ईश्वर की कृपा के सहाय से सब मनुष्यों के हित के लिये इस वेदभाष्य का विधान मैं करता हूं।

संस्कृतप्राकृताभ्यां यद्भाषाभ्यामन्वितं शुभम्।
मन्त्रार्थवर्णनं चात्र क्रियते कामधुङ् मया॥

सो यह वेदभाष्य दो भाषाओं में किया जाता है—एक संस्कृत और दूसरी प्राकृत। इन दोनों भाषाओं में वेदमन्त्रों के अर्थ का वर्णन मैं करता हूं।

आर्य्याणां मुन्यृषीणां या व्याख्यारीतिः सनातनी।
तां समाश्रित्य मन्त्रार्था विधास्यन्ते तु नान्यथा॥

इस वेदभाष्य में अप्रमाण लेख कुछ भी नहीं किया जाता है, किन्तु जो ब्रह्मा से लेके व्यास पर्य्यन्त मुनि और ऋषि हुए हैं उनकी जो व्याख्या रीति है उससे युक्त ही यह वेदभाष्य बनाया जायगा।

येनाधुनिकभाष्यैर्ये टीकाभिर्वेदविदूषकाः।
दोषाः सर्वे विनश्येयुरन्यथार्थविवर्णनाः॥

यह भाष्य ऐसा होगा कि जिससे वेदार्थ से विरुद्ध अब के बने भाष्य और टीकाओं से वेदों में भ्रम से जो मिथ्या दोषों के आरोप हुए हैं वे सब निवृत्त हो जायेंगे।

सत्यार्थश्च प्रकाश्येत वेदानां यः सनातनः।
ईश्वरस्य सहायेन प्रयत्नोऽयं सुसिध्यताम्॥

और इस भाष्य से वेदों का जो सत्य अर्थ है सो संसार में प्रसिद्ध हो, कि वेदों के सनातन अर्थ को सब लोग यथावत् जान लें, इसलिए यह प्रयत्न मैं करता हूं, सो परमेश्वर के सहाय से यह काम अच्छे प्रकार सिद्ध हो, यही सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से मेरी प्रार्थना है। —महर्षि दयानन्द सरस्वती

यजुर्वेद भाष्य के प्रारम्भ में—

महर्षि की मंगल-कामना

योे जीवेषु दधाति सर्वसुकृतज्ञानं गुणैरीश्वर-
स्तं नत्वा क्रियते परोपकृतये सद्यः सुबोधाय च।
ऋग्वेदस्य विधाय वै गुणगुणिज्ञानप्रदातुर्वरं
भाष्यं काम्यमथो क्रियामययजुर्वेदस्य भाष्यं मया ॥
चतुस्त्र्यङ्कै रङ्कै रवनिसहितैर्विक्रमसरे
शुभे पौषे मासे सितदलभवि श्वोन्मिततिथौ
गुरोर्वारे प्रातः प्रतिपदमतीष्टं सुविदुषां
प्रमाणैर्निर्बद्धं शतपथनिरुक्तादिभिरपि ॥

अब यजुर्वेद के भाष्य का आरम्भ किया जाता है—

जो निर्गुण गुणपुंज से देत सुकृत विज्ञान।
प्रणतपाल जगदीश्वरहि करिप्रणाम तिहि ध्यान ॥
ज्ञानदायि ऋग्वेद का भाष्यामीष्ट विधाय।
पर-उपकार विचारि करि शीघ्र सुबोध निधाय ॥
शतपथब्राह्मण आदिपुनि निघंटु निरुक्त निहारि।
यजुर्वेद जो क्रिया पर वर्नौं ताहि विचारि ॥
एकसहस्र नवशत अधिक विक्रमसर चौंतीस।
पौष शुक्ल तेरसि तिथी दिन अधीश वागीश ॥

ऋग्वेद भाष्य का प्रारम्भ

विद्यानन्दं समवति चतुर्वेदसंस्तावनाया
संपूर्य्येशं निगमनिलयं संप्रणम्याथ कुर्वे ।
वेदत्र्यङ्के विधुयुतसरे मार्गशुक्लेऽङ्गभौमे
ऋग्वेदस्याखिलगुणगुणिज्ञानदातुर्हि भाष्यम् ॥

आगे मैं सब प्रकार से विद्या के आनन्द को देने वाली चारों वेद की भूमिका को समाप्त और जगदीश्वर को अच्छी प्रकार प्रणाम करके संवत् १९३४, मार्ग शुक्ल ६ भौमवार के दिन सम्पूर्ण ज्ञान के देने वाले ऋग्वेद के भाष्य का आरम्भ करता हूँ । —महर्षि दयानन्द सरस्वती

सामवेद भाष्य में

सामवेद भाष्यकार मेरठ निवासी श्री पं० तुलसीराम स्वामी जी दो श्लोकों द्वारा अविनाशी प्रभु से प्रार्थना करते हैं ।

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदाञ्जगतेऽखिलान् ।
प्रददौ तमहं वन्दे परमात्मानमव्ययम् ॥

वेद जिसके श्वासवत् हैं और जिसने सम्पूर्ण जगत् के लिए समस्त वेद दियेहैं उस अविनाशी परमात्मा को मैं स्तुत करताहूँ ।

आगमप्रणवश्चाहं नापवाद्यः स्खलन्नपि ।
नहि सद्वर्त्मना गच्छन्स्खलितेष्वप्यपोद्यते ॥

क्योंकि मैं वेदों की ओर झुका हूँ इसलिये कहीं भूल हो जावे तो भी अपवाद के योग्य नहीं हूँ । जैसे कोई स्वच्छ मार्ग में चलता हुआ एक गिरे तो भी निन्दा योग्य नहीं होता ।

श्री पं० जयदेव जी शर्मा विद्यालंकार मीमांसा तीर्थ
द्वारा अथर्ववेदभाष्य की समाप्ति में हृदयोद्गार

ज्ञानविज्ञानसंपूर्णो नानाधर्मपरिष्कृतः ।
कुर्याच्छिवमधीतो नो वेदज्ञानमय प्रभुः ॥

ज्ञान-विज्ञान से भरपूर, अनेक विध धर्मों से परिष्कृत तथा वेदज्ञानमय प्रभु हमारा कल्याण करे।

मानुषोऽहं स्वल्पमतिः स्वभावेन स्खलद्-गतिः ।
इति ज्ञानवतां क्षम्योऽनुग्राह्यस्तद् दयादृशा ॥

मैं मन्दबुद्धि मनुष्य हूं, इसलिए स्वाभाविक है कि त्रुटि रह जायें। अतःज्ञानी जन क्षमा करें और दयादृष्टि से अनुगृहीत करें।

आगमप्रवणश्चाहं नापवाद्यः स्खलन्नपि ।
नहि सद्वर्त्मनागच्छन् स्खलितेष्वप्यपोद्यते ॥

मैं वेद भाष्य में प्रवृत्त हूं, अतः यदि त्रुटि रह जाये तो भी उपेक्षा के योग्य नहीं। श्रेष्ठ मार्ग पर चलता हुआ स्खलन होने पर भी उपेक्षित नहीं होता।

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः ॥

चलते-चलते कभी-कभी प्रमादवश मनुष्य फिसल ही जाया करता है। उस समय दुर्जन तो उस पर हंसते हैं, किन्तु सज्जन उसे संभाल लेते हैं।

काखलेन सह स्पर्द्धा सज्जनस्यभिमानिनः ।
भाषणं भीषणं साधुदूषणं यस्य भूषणम् ॥

अभिमानी सज्जन की दुष्ट के साथ स्पर्द्धा कैसी ? कठोर भाषण सज्जन के लिए तो दोष किन्तु दुर्जन का भूषण है।

ब्रह्मणे नमः

योभूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्व१र्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

जो परमेश्वर एक भूतकाल जो व्यतीत हो गया है, अनेक चकारों से दूसरा जो वर्त्तमान है और तीसरा भविष्य जो होने वाला है, इन तीनों कालों के बीच में जो कुछ होता है उन सब व्यवहारों को वह यथावत् जानता है, तथा जो सब जगत् को अपने विज्ञान से ही जानता, रचता, पालन-लय करता और संसार के सब पदार्थों का अधिष्ठाता अर्थात् स्वामी है, जिस का सुख ही केवल स्वरूप है जो कि मोक्ष और व्यवहार सुख का भी देने वाला है, ज्येष्ठ अर्थात् सबसे बड़ा सब सामर्थ्य से युक्त ब्रह्म जो परमात्मा है उसको अत्यन्त प्रेम से हमारा नमस्कार हो। जो कि सब कालों के ऊपर विराजमान है, जिस को लेश-मात्र भी दुःख नहीं होता उस आनन्दघन परमेश्वर को हमारा नमस्कार प्राप्त हो।

यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम् ।
दिवं यश्चक्रे मूर्द्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

जिस परमेश्वर के होने और ज्ञान में भूमि जो पृथिवी आदि पदार्थ हैं सो प्रमा अर्थात् यथार्थज्ञान की सिद्धि होने का दृष्टान्त हैं, तथा जिसने अपनी सृष्टि में पृथिवी को पादस्थानी रचा है, अन्तरिक्ष जो पृथिवी और सूर्य के बीच में आकाश है सो जिसने उदरस्थानी किया है, और जिसने अपनी सृष्टि

में दिव् अर्थात् प्रकाश करने वाले पदार्थों को सबके ऊपर मस्तक-स्थानी किया है, अर्थात् जो पृथिवी से लेके सूर्यलोकपर्यन्त सब जगत् को रचके, उसमें व्यापक होके, जगत् के सब अवयवों में पूर्ण होके सबको धारण कर रहा है, उस परब्रह्म को हमारा अत्यन्त नमस्कार हो ॥

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।
अग्निं यश्चक्र आस्यं१तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

और जिसने नेत्रस्थानी सूर्य और चन्द्रमा को किया है, जो कल्प २ के आदि में सूर्य और चन्द्रमादि पदार्थों को बारम्बार नये २ रचता है, और जिसने मुखस्थानी अग्नि को उत्पन्न किया है, उसी ब्रह्म को हम लोगों का नमस्कार हो ॥

यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

अथर्ववेदसंहितायाम् । काण्डे १० । प्रपाठके २३ । अनुवाके ४ ।
सूक्ते ८ । मं० १ । तथा सूक्ते ७ । मं० ३२-३४ ॥

जिसने ब्रह्माण्ड के वायु को प्राण और अपान की नाईं किया है, तथा जो प्रकाश करने वाली किरण हैं वे चक्षु की नाईं जिसने की हैं, अर्थात् उनसे ही रूप ग्रहण होता है,और जिसने दशों दिशाओं को सब व्यवहारों को सिद्ध करने वाली बनाई हैं, ऐसा जो अनन्त विद्यायुक्त परमात्मा सब मनुष्यों का इष्टदेव है, उस ब्रह्म को निरन्तर हमारा नमस्कार हो ॥

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

सुखों का मूल

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

जो जगदीश्वर अपनी कृपा से ही अपने आत्मा का विज्ञान देने वाला है, जो सब विद्या और सत्य सुखों की प्राप्ति कराने वाला है, जिस की उपासना सब विद्वान् लोग करते आये हैं, और जिसका अनुशासन जो वेदोक्त शिक्षा है उसको अत्यन्त मान्य से सब शिष्ट लोग स्वीकार करते हैं, जिसका आश्रय करना ही मोक्षसुख का कारण है और जिसकी अकृपा ही जन्ममरण-रूप दुःखों को देने वाली है अर्थात् ईश्वर और उसका उपदेश जो सत्यविद्या सत्यधर्म और सत्यमोक्ष हैं उनको नहीं मानना, और जो वेद से विरुद्ध होके अपनी कपोलकल्पना अर्थात् दुष्ट इच्छा से बुरे कामों में वर्त्तता है, उस पर ईश्वर की अकृपा होती है, वही सब दुःखों का कारण है, और जिसकी आज्ञा-पालन ही सब सुखों का मूल है, जो सुखस्वरूप और सब प्रजा का पति है उस परमेश्वर देव की प्राप्ति के लिए सत्य प्रेम भक्तिरूप सामग्री से हम लोग नित्य भजन करें, जिससे हम लोगों को किसी प्रकार का दुःख कभी न हो ॥

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु ।
शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥

यजु० अ० ३६ । मं० १७, २२ ॥

हे परमेश्वर ! आप जिस २ देश से जगत् के रचन और पालन के अर्थ चेष्टा करते हैं उस २ देश से भय से रहित करिये, अर्थात् किसी देश से हमको किञ्चित् भी भय न हो, वैसे ही

सब दिशाओं में जो आप की प्रजा और पशु हैं उनसे भी हम को भयरहित करें, तथा हमसे उनको सुख हो और उनको भी हमसे भय न हो, तथा आपकी प्रजा में जो मनुष्य और पशु आदि हैं, उन सबसे जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पदार्थ हैं, उनको आपके अनुग्रह से हम लोग शीघ्र प्राप्त हों, जिससे मनुष्य जन्म के धर्मादि जो फल हैं, वे सुख से सिद्ध हों ॥

—):o:(—

ईश्वर की विद्या वेद

एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः ॥

श० कां० १४ । अ० ५ । ब्रा० ४ । कं० १० ॥

याज्ञवल्क्य महाविद्वान् जो महर्षि हुए हैं, वह अपनी पंडिता मैत्रेयी स्त्री को उपदेश करते हैं कि मैत्रेयि ! जो आकाशादि से भी बड़ा सर्वव्यापक परमेश्वर है, उससे ही ऋक् यजुः साम और अथर्व ये चारां वेद उत्पन्न हुए हैं, जैसे मनुष्य के शरीर से श्वास बाहर को आके भीतर को जाती है इसी प्रकार सृष्टि के आदि में ईश्वर वेदों को उत्पन्न करके संसार में प्रकाश करता है और प्रलय में संसार में वेद नहीं रहते परन्तु उसके ज्ञान के भीतर वे सदा बने रहते हैं, बीजाङ्कुरवत् । जैसे बीज में अङ्कुर प्रथम ही रहता है, वही वृक्षरूप होके फिर भी बीज के भीतर रहता है, इसी प्रकार से वेद भी ईश्वर के ज्ञान में सब दिन बने रहते हैं उनका नाश कभी नहीं होता, क्योंकि वह ईश्वर की विद्या है, इससे इनको नित्य ही जानना ॥

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

सत्याचरण

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥ यजु० अ० १। मं० ५॥

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि सब मनुष्य लोग ईश्वर के सहाय की इच्छा करें, क्योंकि उसके सहाय के विना धर्म का पूर्ण ज्ञान और उसका अनुष्ठान पूरा कभी नहीं हो सकता।

हे सत्यपते परमेश्वर! मैं जिस सत्यधर्म का अनुष्ठान किया चाहता हूं, उसकी सिद्धि आपकी कृपा से ही हो सकती है। इसी मन्त्र का अर्थ शतपथब्राह्मण में भी लिखा है कि—"जो मनुष्य सत्य के आचरणरूप व्रत को करते हैं वे देव कहाते हैं, और जो असत्य का आचरण करते हैं उनको मनुष्य कहते हैं।" इससे मैं उस सत्यव्रत का आचरण किया चाहता हूं। मुझ पर आप ऐसी कृपा कीजिये कि जिससे मैं सत्यधर्म का अनुष्ठान पूरा कर सकूं। उस अनुष्ठान की सिद्धि करने वाले एक आप ही हो। सो कृपा से सत्यरूप धर्म के अनुष्ठान को सदा के लिये सिद्ध कीजिये। सो यह व्रत है कि जिस को मैं निश्चय से चाहता हूं। उन सब असत्य कामों से छूट के सत्य के आचरण करने में सदा दृढ़ रहूं।

परन्तु मनुष्य को यह करना उचित है कि ईश्वर ने मनुष्यों में जितना सामर्थ्य रक्खा है, उतना पुरुषार्थ अवश्य करें। उसके उपरांत ईश्वर के सहाय की इच्छा करनी चाहिये। क्योंकि मनुष्यों में सामर्थ्य रखने का ईश्वर का यही प्रयोजन है कि मनुष्यों को अपने पुरुषार्थ से ही सत्य का आचरण अवश्य करना चाहिये। जैसे कोई मनुष्य आंख वाले पुरुष को ही किसी चीज को दिखला सकता है, अन्धे को नहीं, इसी रीति से जो

मनुष्य सत्यभाव, पुरुषार्थ से धर्म को किया चाहता है उस पर ईश्वर भी कृपा करता है, अन्य पर नहीं। क्योंकि ईश्वर ने धर्म करने के लिये बुद्धि आदि बढ़ने के साधन जीव के साथ रक्खे हैं। जब जीव उनसे पूर्ण पुरुषार्थ करता है, तब परमेश्वर भी अपने सब सामर्थ्य से उस पर कृपा करता है, अन्य पर नहीं। क्योंकि सब जीव कर्म करने में स्वाधीन और पापों के फल भोगने में कुछ पराधीन भी हैं॥

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते॥

यजु० अ० १९। मं० ३०॥

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि जब मनुष्य धर्म को जानने की इच्छा करता है, तभी सत्य को जानता है। उसी सत्य में मनुष्यों को श्रद्धा करनी चाहिये, असत्य में कभी नहीं।

जो मनुष्य सत्य के आचरण को दृढ़ता से करता है, तब वह दीक्षा अर्थात् उत्तम अधिकार के फल को प्राप्त होता है। जब मनुष्य उत्तमगुणों से युक्त होता है, तब सब लोग सब प्रकार से उसका सत्कार करते हैं। क्योंकि धर्म आदि शुभगुणों से ही उस दक्षिणा को मनुष्य प्राप्त होता है, अन्यथा नहीं। जब ब्रह्मचर्य आदि सत्य व्रतों से अपना और दूसरे मनुष्यों का अत्यन्त सत्कार होता है, तब उसी में दृढ़ विश्वास होता है। क्योंकि सत्य धर्म का आचरण ही मनुष्यों का सत्कार कराने वाला है। फिर सत्य के आचरण में जितनी २ अधिक श्रद्धा बढ़ती जाती है उतना २ ही मनुष्य लोग व्यवहार और परमार्थ के सुख को प्राप्त होते जाते हैं, अधर्माचरण से नहीं। इससे क्या सिद्ध हुआ कि; सत्य की प्राप्ति के लिये सब दिन श्रद्धा और उत्साह आदि पुरुषार्थ को मनुष्य लोग बढ़ाते ही जायं, जिससे सत्य धर्म की यथावत् प्राप्ति हो॥ —महर्षि दयानन्द

मित्र-भाव

दृते दृँ ह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥

यजुर्वेद अ० ३६ । मं० १८ ॥

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि मनुष्य लोग आपस में सब प्रकार के प्रेमभाव से सब दिन वर्त्तें । और सब मनुष्यों को उचित है कि जो वेदों में ईश्वरोक्त धर्म है, उसी को ग्रहण करें, और वेदरीति से ही ईश्वर की उपासना करें, कि जिससे मनुष्यों की धर्म में ही प्रवृत्ति हो ।

हे सब दुःखों के नाश करने वाले परमेश्वर ! आप हम पर ऐसी कृपा कीजिये कि जिससे हम लोग आपस में वैर को छोड़ के एक दूसरे के साथ प्रेमभाव से वर्त्तें । और सब प्राणी मुझको अपना मित्र जान के बन्धु के समान वर्त्तें । ऐसी इच्छा से युक्त हम लोगों को सत्य सुख और शुभ गुणों से सदा बढ़ाइये । इसी प्रकार से मैं भी सब मनुष्यादि प्राणियों को अपने मित्र जानूं, और हानि, लाभ, सुख और दुःख में अपने आत्मा के समतुल्य ही सब जीवों को मानूं । हम सब लोग आपस में मिलके सदा मित्रभाव रक्खें, और सत्यधर्म के आचरण से सत्य सुखों को नित्य बढ़ावें । जो ईश्वर का कहा धर्म है, यही एक सब मनुष्यों को मानने के योग्य है ॥

— महर्षि दयानन्द सरस्वती भाष्य

—):o:(—

वर्णों के कर्त्तव्य

ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च ।
यशश्च वर्चश्च द्रविणं च ॥

सबसे उत्तम विद्या और श्रेष्ठ कर्म करने वालों को ही ब्राह्मण वर्ण का अधिकार देना, उनसे विद्या का प्रचार कराना, और उन लोगों को भी चाहिए कि विद्या के प्रचार में ही सदा तत्पर रहें। अर्थात् सब कामों में चतुरता, शूरवीरपन, धीरज, वीरपुरुषों से युक्त सेना का रखना, दुष्टों को दण्ड देना और श्रेष्ठों का पालन करना, इत्यादि गुणों के बढ़ाने वाले पुरुषों को क्षत्रियवर्ण का अधिकार देना। श्रेष्ठ पुरुषों की सभा के अच्छे नियमों से राज्य को सब सुखों से युक्त करना और उत्तम गुण सहित होके सब कामों को सदा सिद्ध करना चाहिए। वैश्य आदि वर्णों का व्यापारादि व्यवहारों में भूगोल के बीच में जाने आने का प्रबन्ध करना, और उनकी अच्छी रीति से रक्षा करनी अवश्य है, जिससे धनादि पदार्थों की संसार में बढ़ती हो। सब मनुष्यों में सब दिन सत्य गुणों का ही प्रकाश करना चाहिए। उत्तम कामों से भूगोल में श्रेष्ठ कीर्त्ति को बढ़ाना उचित है। सत्यविद्याओं के प्रचार के लिये अनेक पाठशालाओं में पुत्र और कन्याओं का अच्छी रीति से पढ़ने पढ़ाने का प्रचार सदा बढ़ाते जाना चाहिये। सब मनुष्यों को उचित है कि पूर्वोक्त धर्म से अप्राप्त पदार्थों की प्राप्ति की इच्छा से सदा पुरुषार्थ करना, प्राप्त पदार्थों की रक्षा यथावत् करनी चाहिये, रक्षा किये पदार्थों की सदा बढ़ती करना, और सत्य विद्या के प्रचार आदि कामों में बढ़े हुए धनादि पदार्थों का खरच यथावत् करना चाहिये। इस चार प्रकार के पुरुषार्थ से धन-धान्यादि को बढ़ा के सुख को सदा बढ़ाते जाओ॥

संगठन

सं गच्छध्वं सं वद्ध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥

ऋ० अ० ८ । अ० ८ । व० ४६ । मं० २ ॥

देखो, परमेश्वर हम सबों के लिये धर्म का उपदेश करता है कि, हे मनुष्य लोगो ! जो पक्षपातरहित, न्याय, सत्याचरण से युक्त धर्म है, तुम लोग उसी को ग्रहण करो, उससे विपरीत कभी मत चलो, किन्तु उसी की प्राप्ति के लिये विरोध को छोड़ के परस्पर सम्मति में रहो, जिससे तुम्हारा उत्तम सुख सब दिन बढ़ता जाय और किसी प्रकार का दुःख न हो । तुम लोग विरुद्ध वाद को छोड़ के परस्पर अर्थात् आपस में प्रीति के साथ पढ़ना पढ़ाना, प्रश्न उत्तर सहित संवाद करो, जिससे तुम्हारी सत्यविद्या नित्य बढ़ती रहे । तुम लोग अपने यथार्थ ज्ञान को नित्य बढ़ाते रहो, जिससे तुम्हारा मन प्रकाशयुक्त होकर पुरुषार्थ को नित्य बढ़ावे, जिससे तुम लोग ज्ञानी होके नित्य आनन्द में बने रहो । और तुम लोगों को धर्म का ही सेवन करना चाहिये, अधर्म का नहीं । जैसे पक्षपातरहित धर्मात्मा विद्वान् लोग वेद-रीति से सत्यधर्म का आचरण करते हैं, उसी प्रकार से तुम भी करो । क्योंकि धर्म का ज्ञान तीन प्रकार से होता है—एक तो धर्मात्मा विद्वानों की शिक्षा, दूसरा आत्मा की शुद्धि तथा सत्य को जानने की इच्छा, और तीसरा परमेश्वर की कही वेदविद्या को जानने से ही मनुष्यों को सत्य असत्य का यथावत् बोध होता है, अन्यथा नहीं ॥

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनःसह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥
ऋ० अ० ८। अ० ८। व० ४६। मं० ३॥

हे मनुष्य लोगो ! जो तुम्हारा मन्त्र, अर्थात् सत्य असत्य का विचार है, वह समान हो, उसमें किसी प्रकार का विरोध न हो। और जब २ तुम लोग मिल के विचार करो, तब २ सब के वचनों को अलग २ सुन के, जो २ धर्मयुक्त और जिसमें सब का हित हो सो २ सब में से अलग करके, उसी का प्रचार करो, जिससे सभों का बराबर सुख बढ़ता जाय और जिसमें सब मनुष्यों का मान, ज्ञान, विद्याभ्यास, ब्रह्मचर्य आदि आश्रम, अच्छे २ काम, उत्तम मनुष्यों की सभा से राज्य के प्रबन्ध का यथावत् करना और जिससे बुद्धि, शरीर, बल, पराक्रम आदि गुण बढ़ें तथा परमार्थ और व्यवहार शुद्ध हों, ऐसी जो उत्तम मर्य्यादा है, सो भी तुम लोगों की एक ही प्रकार की हो, जिससे तुम्हारे सब श्रेष्ठ काम सिद्ध होते जायं। हे मनुष्य लोगो ! तुम्हारा मन भी आपस में विरोधरहित, अर्थात् सब प्राणियों के दुःख के नाश और सुख की वृद्धि के लिये अपने आत्मा के समतुल्य पुरुषार्थवाला हो। शुभ गुणों की प्राप्ति की इच्छा को 'संकल्प' और दुष्ट गुणों के त्याग की इच्छा को 'विकल्प' कहते है, जिससे जीवात्मा ये दोनों कर्म करता है, उसका नाम 'मन' है। उससे सदा पुरुषार्थ करो। जिससे तुम्हारा धर्म सदा दृढ़ और अविरुद्ध हो। तथा चित्त उसको कहते हैं कि जिससे सब अर्थों का स्मरण अर्थात् पूर्वापर कर्मों का यथावत् विचार हो, वह भी तुम्हारा एक सा हो। जो तुम्हारे मन और चित्त हैं, ये दोनों सब मनुष्यों के सुख ही के लिये प्रयत्न में रहें। इस प्रकार से जो मनुष्य सब का उपकार करने और सुख देनेवाले

हैं, मैं उन्हीं पर सदा कृपा करता हूं। अर्थात् मैं उनके लिये आशीर्वाद और आज्ञा देता हूं कि सब मनुष्य मेरी इस आज्ञा के अनुकूल चलें, जिससे उनका सत्य धर्म बढ़े और असत्य का नाश हो। हे मनुष्य लोगो ! जब २ कोई पदार्थ किसी को दिया चाहो अथवा किसी से ग्रहण किया चाहो, तब २ धर्म से युक्त ही करो उससे विरुद्ध व्यवहार को मत करो। और यह बात निश्चय करके जान लो कि मैं सत्य के साथ तुम्हारा और तुम्हारे साथ सत्य का संयोग करता हूं। इसलिये कि तुम लोग इसी को धर्म मान के सदा करते रहो, और इससे भिन्न को धर्म कभी मत मानो ॥

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥

ऋ० अ० ८। अ० ८। व० ४६। मं० ४ ॥

ईश्वर इस मन्त्र का प्रयोजन कहता है कि हे मनुष्य लोगो ! तुम्हारा जितना सामर्थ्य है, उसको धर्म के साथ मिला के सब सुखों को सब दिन बढ़ाते रहो। निश्चय, उत्साह और धर्मात्माओं के आचरण को 'आकूति' कहते हैं। हे मनुष्य लोगो ! तुम्हारा सब पुरुषार्थ जीवों के सुख के लिये सदा हो, जिससे मेरे कहे धर्म का कभी त्याग न हो। और सदा वैसा ही प्रयत्न करते रहो कि जिससे तुम्हारे हृदय अर्थात् मन के सब व्यवहार आपस में सदा प्रेमसहित और विरोध से अलग रहें। मनः शब्द का अनेक वार ग्रहण में यह प्रयोजन है कि जिससे मन के अनेक अर्थ जाने जायं—'कामः'—प्रथम विचार ही करके सब उत्तम व्यवहारों का आचरण करना और बुरों को छोड़ देना इसका नाम काम है। 'संकल्प'—जो सुख और विद्यादि शुभ गुणों को प्राप्त होने के लिये प्रयत्न से अत्यन्त पुरुषार्थ

करने की इच्छा है उसको संकल्प कहते हैं। 'विचिकित्सा'—जो २ काम करना हो उस २ को प्रथम शङ्का कर २ के ठीक निश्चय करने के लिये जो संदेह करना है उसका नाम विचिकित्सा है। 'श्रद्धा'—जो ईश्वर और सत्य धर्म आदि शुभ गुणों में निश्चय से विश्वास को स्थिर रखना है, उसको श्रद्धा जानना। 'अश्रद्धा'—अर्थात् अविद्या, कुतर्क, बुरे काम करने, ईश्वर को नहीं मानने, और अन्याय आदि अशुभ गुणों से सब प्रकार से अलग रहने का नाम अश्रद्धा समझना चाहिये। । 'धृतिः'—जो सुख, दुःख, हानि, लाभ आदि के होने में भी अपने धीरज को नहीं छोड़ना उसका नाम धृति है। 'अधृतिः'—बुरे कामों में दृढ़ न होने को अधृति कहते हैं। 'ह्रीः'—अर्थात् जो झूठे आचरण करने और सच्चे कामों को नहीं करने में मन को लज्जित करना है, उसको ह्री कहते हैं। 'धीः'—जो श्रेष्ठ गुणों को शीघ्र धारण करनेवाली वृत्ति है उसको धी कहते हैं। 'भी'—जो ईश्वर की आज्ञा अर्थात् सत्याचरण धर्म करना और उससे उलटे पाप के आचरण से नित्य डरते रहना। अर्थात् ईश्वर हमारे सब कामों को सब प्रकार से देखता है ऐसा जानकर उससे सदा डरना, कि जो मैं पाप करूंगा तो ईश्वर मुझ पर अप्रसन्न होगा—इत्यादि गुण वाली वस्तु का नाम 'मन' है। इसको सब प्रकार से सब के सुख के लिये युक्त करो। हे मनुष्य लोगो! जिस प्रकार अर्थात् पूर्वोक्त धर्म सेवन से तुम लोगों को उत्तम सुखों की बढ़ती हो, और जिस श्रेष्ठ सहाय से आपस में एक से दूसरे को सुख बढ़े, ऐसा काम सब दिन करते रहो। किसी को दुःखी देख के अपने मन में सुख मत मानो, किन्तु सब को सुखी करके अपने आत्मा को सुखी जानो। जिस प्रकार से स्वाधीन होके सब लोग सदा सुखी रहें, वैसा ही यत्न करते रहो। —महर्षि दयानन्द सरस्वती भाष्य

पुरुषार्थी बनो

स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्य्यूढा दीक्षया गुप्ता ।
यज्ञे प्रतिष्ठिता लोको निधनम् ॥

सब प्रकार से मनुष्य लोग स्वधा अर्थात् अपने ही पदार्थों का धारण करें। इस अमृतरूप व्यवहार से सदा युक्त हों। सब मनुष्य सत्य व्यवहार पर अत्यन्त विश्वास को प्राप्त हों। क्योंकि जो सत्य है वही विश्वास का मूल, तथा सत्य का आचरण ही उसका फल और स्वरूप है, असत्य कभी नहीं। विद्वानों की सत्य शिक्षा से रक्षा को प्राप्त हो और मनुष्य आदि प्राणियों की रक्षा में परम पुरुषार्थ करो। यज्ञ जो सब में व्यापक अर्थात् परमेश्वर, अथवा सब संसार का उपकार करने वाला अश्वमेधादि यज्ञ, अथवा जो शिल्पविद्या सिद्ध करके उपकार लेना जो यज्ञ है, इस तीन प्रकार के यज्ञ में सब मनुष्य यथावत् प्रवृत्ति करें। जब तक तुम लोग जीते रहो, तब तक सदा सत्य कर्म में ही पुरुषार्थ करते रहो, किन्तु इसमें आलस्य कभी मत करो। ईश्वर का यह उपदेश सब मनुष्यों के लिए है॥

ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च वाक् चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च ॥

अथर्व० कां० १२। अनु० ५। मं० ३, ७॥

धर्म के पालन से युक्त जो पराक्रम, प्रगल्भता, अर्थात् भय रहित होके दीनता से दूर रहना, सुख दुःख हानि लाभ आदि की प्राप्ति में भी हर्ष शोकादि छोड़ के सत्य धर्म में दृढ़ रहना, दुःख का निवारण और सहन करना, ब्रह्मचर्य आदि अच्छे

नियमों से शरीर का आरोग्य, बुद्धि की चतुराई आदि बल का बढ़ाना, सत्य विद्या की शिक्षा, सत्य मधुर अर्थात् कोमल प्रिय भाषण का करना, जो मन पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय हैं, उनको पाप कर्मों से रोक के सदा सत्य पुरुषार्थ में प्रवृत्त रखना, चक्रवर्त्तिराज्य की सामग्री को सिद्ध करना, वेदोक्त न्याय से युक्त होके, पक्षपात को छोड़ के, सत्य ही का सदा आचरण और असत्य का त्याग करना है तथा जो सबका उपकार करने वाला और जिसका फल इस जन्म और परजन्म में आनन्द है, उसी को 'धर्म' और उससे उलटा करने को 'अधर्म' कहते हैं। उसी धर्म की यह सब व्याख्या है कि जो 'सं गच्छध्वं' इस मंत्र से लेके 'यतोऽभ्युदय०' इस सूत्र तक जितने धर्म के लक्षण लिखे हैं, वे सब लक्षण मनुष्यों को ग्रहण करने के योग्य हैं ॥

शुद्ध-भोजन

आयुश्च रूपं च नाम च कीर्तिश्च
प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च ॥

वीर्य्य आदि धातुओं की शुद्धि और रक्षा करना, तथा युक्तिपूर्वक ही भोजन और वस्त्र आदि का जो धारण करना है, इन अच्छे नियमों से उमर को सदा बढ़ाओ। अत्यन्त विषय-सेवा से पृथक् रह के और शुद्ध वस्त्र आदि धारण से शरीर का स्वरूप सदा उत्तम रखना। उत्तम कर्मों के आचरण से नाम की प्रसिद्धि करनी चाहिये, जिससे अन्य मनुष्यों का भी श्रेष्ठ कर्मों में उत्साह हो। श्रेष्ठ गुणों के ग्रहण के लिये परमेश्वर के

गुणों का श्रवण और उपदेश करते रहो, जिससे तुम्हारा भी यश बढ़े। जो वायु भीतर से बाहर आता है उसको 'प्राण', और जो बाहर से भीतर जाता है, उसको 'अपान' कहते हैं। योगाभ्यास, शुद्ध देश में निवास आदि और भीतर से बल करके प्राण को बाहर निकाल के रोकने से शरीर के रोगों को छुड़ा के बुद्धि आदि को बढ़ाओ। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, संभव और अभाव, इन आठ प्रमाणों के विज्ञान से सत्य का नित्य शोधन करके ग्रहण किया करो॥

पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं च ऋतं च सत्यं
चेष्टं च पूर्तं च प्रजा च पशवश्च॥

अथर्व० कां० १२। अनु० ५। सू० ५। खं० २। मं० ८-१०॥

जो पय अर्थात् दूध, जल आदि, और जो रस अर्थात् शक्कर, ओषधि और घी आदि हैं, इनको वैद्यक शास्त्रों की रीति से यथावत् शोध के भोजन आदि करते रहो। वैद्यक शास्त्र की रीति से चावल आदि अन्न का यथावत् संस्कार करके भोजन करना चाहिये। ऋत नाम जो ब्रह्म है, उसी की सदा उपासना करनी। जैसा हृदय में ज्ञान हो सदा वैसा ही भाषण करना और सत्य को ही मानना चाहिये। इष्ट जो ब्रह्म है, इसी की उपासना और जो पूर्वोक्त यज्ञ सब संसार को सुख देने वाला है, उस इष्ट की सिद्धि करने की पूर्त्ति, और जिस २ उत्तम कामों के आरम्भ को यथावत् पूर्ण करने के लिए जो २ अवश्य हो सो २ सामग्री पूर्ण करनी चाहिये। सब मनुष्य लोग अपने संतान और राज्य को अच्छी शिक्षा दिया करें, और हस्ती तथा घोड़े आदि पशुओं को भी अच्छी रीति से सुशिक्षित करना उचित है। इन मन्त्रों में और भी अनेक प्रयोजन हैं कि सब मनुष्य लोग अन्य भी धर्म के शुभ लक्षणों का ग्रहण करें।

स्वाध्याय करो

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च। सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च। तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च। दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च। शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च। अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचने च। अग्निहोत्रं च स्वाध्यायप्रवचने च। अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचने च। मानुषं च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजातिश्च स्वाध्यायप्रवचने च। सत्यमिति सत्यवचा राथीतरः। तप इति तपोनित्यः पौरुशिष्टिः। स्वाध्यायप्रवचन एवेति नाको मौद्गल्यः। तद्धि तपस्तद्धि तपः।

सब मनुष्यों को उचित है कि अपने ज्ञान और विद्या को बढ़ाते हुए एक ब्रह्म ही की उपासना करते रहें। उसके साथ वेदादि शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना भी बराबर करते जायं। प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से ठीक २ परीक्षा करके जैसा तुम अपने आत्मा में ज्ञान से जानते हो, वैसा ही बोलो और उसी को मानो। उसके साथ पढ़ना पढ़ाना भी कभी न छोड़ो। विद्याग्रहण के लिये ब्रह्मचर्य आश्रम को पूर्ण करके सदा धर्म में निश्चित रहो। अपनी आंख आदि इन्द्रियों को अधर्म और आलस्य से छुड़ा के सदा धर्म में चलाओ अपने आत्मा और मन को सदा धर्म-सेवन में ही स्थिर रक्खो। वेदादि शास्त्रों से और अग्नि आदि पदार्थों से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करो। तथा अनेक प्रकार से शिल्पविद्या की उन्नति करो। वायु और वृष्टि-

जल की शुद्धिद्वारा अग्निहोत्र से लेके अश्वमेध पर्यन्त यज्ञों से सब सृष्टि का उपकार सदा करते रहो। जो सब जगत् के उपकार के लिये सत्यवादी, सत्यकारी, पूर्ण विद्वान्, सब का सुख चाहने वाले हों, उन सत्पुरुषों के सङ्ग से करने के योग्य व्यवहारों को सदा बढ़ाते रहो। सब मनुष्यों के राज्य और प्रजा के ठीक २ प्रबन्ध से धन आदि पदार्थों को बढ़ा के, रक्षा करके और अच्छे कामों में खर्च करके, उनसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों फल की सिद्धि द्वारा अपना जन्म सफल करो। अपने सन्तानों का यथायोग्य पालन, शिक्षा से विद्वान् करके, सदा धर्मात्मा और पुरुषार्थी बनाते रहो। जो सन्तानों की उत्पत्ति करने का व्यवहार है उसको 'पुत्रेष्टि' कहते हैं उसमें श्रेष्ठ भोजन और औषध सेवन सदा करते रहो, तथा ठीक २ गर्भ की रक्षा भी करो। पुत्र और कन्याओं के जन्म समय में स्त्री और बालकों की रक्षा युक्तिपूर्वक करो।

ऋत से लेके प्रजाति पर्यन्त धर्म के जो बारह लक्षण होते है, उन सब के साथ स्वाध्याय जो पढ़ना और प्रवचन जो पढ़ाने का उपदेश किया है, सो इसलिये है कि पूर्वोक्त जो धर्म के लक्षण हैं, वे तब प्राप्त हो सकते हैं कि जब मनुष्य लोग सत्य विद्या को पढ़ें, और तभी सदा सुख में रहेंगे। क्योंकि सब गुणों में विद्या ही उत्तम गुण है। इसलिये सब धर्मलक्षणों के साथ स्वाध्याय और प्रवचन का ग्रहण किया है। सो इनका त्याग करना कभी न चाहिये। हे मनुष्य लोगो! तुम सब दिन सत्यवचन ही बोलो। धर्म और ईश्वर की प्राप्ति करने के लिये नित्य विद्याग्रहण करो, अर्थात् विद्या का जो पढ़ना पढ़ाना है, यही सब से उत्तम है॥

—महर्षि दयानन्द



पांच पूजनीय देव

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति । सत्यं वद । धर्मं चर । स्वाध्यायान्मा प्रमदः । आचार्य्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः । सत्यान्न प्रमदितव्यम् । धर्मान्न प्रमदितव्यम् । कुशलान्न प्रमदितव्यम् । भूत्यै न प्रमदितव्यम् । स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् । देवपितृकार्य्याभ्यां न प्रमदितव्यम् । मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव । यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि । यान्यस्माकꣳसुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि ॥

जो आचार्य अर्थात् विद्या और शिक्षा का देने वाला है, वह विद्या पढ़ने के समय और जब तक न पढ़ चुके तब तक अपने पुत्र और शिष्यों को इस प्रकार उपदेश करे कि—हे पुत्रो वा शिष्य लोगो ! तुम सदा सत्य ही बोला करो । और धर्म का ही सेवन करके एक परमेश्वर ही की भक्ति किया करो । इसमें आलस्य वा प्रमाद कभी मत करो । आचार्य को अनेक उत्तम पदार्थ देकर प्रसन्न करो । और युवावस्था में ही विवाह करके प्रजा की उत्पत्ति करो । तथा सत्य धर्म को कभी मत छोड़ो । कुशलता अर्थात् चतुराई को सदा ग्रहण करके, भूति अर्थात् उत्तम ऐश्वर्य को सदा बढ़ाते जाओ । और पढ़ने पढ़ाने में कभी आलस्य मत करो ।

देव जो विद्वान् लोग और पितृ अर्थात् ज्ञानी लोगों की सेवा और सङ्ग से विद्या के ग्रहण करने में आलस्य वा प्रमाद कभी मत करो। माता, पिता, आचार्य अर्थात् विद्या के देनेवाले, और अतिथि जो सत्य उपदेश के करने वाले विद्वान् पुरुष हैं, उनकी सेवा में आलस्य कभी मत करो। ऐसे ही सत्यभाषणादि शुभ गुणों और कर्मों ही का सदा सेवन करो। किन्तु मिथ्या-भाषणादि को कभी मत करो। माता, पिता और आचार्य आदि अपने सन्तानों तथा शिष्यों को ऐसा उपदेश करें कि—हे पुत्रो वा शिष्य लोगो ! हमारे जो सुचरित्र अर्थात् अच्छे काम हैं, तुम लोग उन्हीं का ग्रहण करो, किन्तु हमारे बुरे कामों को कभी नहीं ।।

—महर्षि दयानन्द

श्रद्धा से दो

ये के चास्मच्छ्रेयाꣳसो ब्राह्मणाः । तेषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम् । श्रद्धया देयम् । अश्रद्धया देयम् । श्रिया देयम् । ह्रिया देयम् । भिया देयम् । संविदा देयम् । अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् । ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः, युक्ता अयुक्ताः अलूक्षा धर्म-कामाः स्युः, यथा ते तत्र वर्त्तेरन्, तथा तत्र वर्त्तेथाः । अथाभ्याख्यातेषु ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः युक्ता अयुक्ताः, अलूक्षा धर्मकामाः स्युः यथा ते तेषु वर्त्तेरन्, तथा तेषु वर्त्तेथाः । एष आदेशः । एष उपदेशः । एषा

वेदोपनिषत् । एतदनुशासनम् । एवमुपासितव्यम् । एवमु चैतदुपास्यम् ॥

तैत्तिरीय आरण्यके प्रपा० ७ । अनु० ६, ११ ॥

जो हमारे बीच में विद्वान् और ब्रह्म के जानने वाले धर्मात्मा मनुष्य हैं, उन्हीं के वचनों में विश्वास करो और उनको प्रीति वा अप्रीति से, श्री वा लज्जा से, भय अथवा प्रतिज्ञा से सदा दान देते रहो, तथा विद्यादान सदा करते जाओ। और जब तुमको किसी बात में सन्देह हो, तब पूर्ण विद्वान्, पक्षपातरहित धर्मात्मा, मनुष्यों से पूछ के शङ्कानिवारण सदा करते रहो। वे लोग जिस २ प्रकार से जिस २ धर्म काम में चलते होवें, वैसे ही तुम भी चलो। यही आदेश अर्थात्, अविद्या को हटा के उसके स्थान में विद्या का, और अधर्म को हटा के धर्म का स्थापन करना है। इसी को उपदेश और शिक्षा भी कहते हैं। इसी प्रकार शुभ लक्षणों को ग्रहण करके एक परमेश्वर ही की सदा उपासना करो ॥ —महर्षि दयानन्द सरस्वती भाष्य

—:)o(:—

अभय की भावना

यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥

यथा जिस प्रकार द्यौ और पृथिवी भय नहीं करते, कभी नष्ट भी नहीं होते इसी प्रकार हे मेरे प्राण ! भय मत कर ।

यथाहश्च रात्री च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥

जिस प्रकार दिन और रात्रि न किसी से भय करते और

न नष्ट होते हैं इसी प्रकार हे मेरे प्राण ! तू भी किसी से भय मत कर।

यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यतः ।

एवा मे प्राण मा बिभेः ॥

और जिस प्रकार सूर्य और चन्द्र न भय करते और न नष्ट होते हैं इसी प्रकार हे मेरे प्राण ! तू भी भय मत कर। तू भी नष्ट नहीं होगा।

यथा ब्रह्म च क्षत्रं च न बिभीतो न रिष्यतः ।

एवा मे प्राण मा बिभेः ॥

और जिस प्रकार ब्रह्मज्ञान या ब्राह्मण और क्षात्र बल या क्षत्रिय दोनों वर्ण नहीं डरते और न नष्ट होते हैं इसी प्रकार हे मेरे प्राण ! तू भी भय मत कर। तू भी नष्ट नहीं होगा।

यथा सत्यं चानृतं च न बिभीतो न रिष्यतः ।

एवा मे प्राण मा बिभेः ॥

और जिस प्रकार सत्य और असत्य अर्थात् व्यावहारिक प्रयोग अथवा सत्य परमार्थ और अनृत ऐहिक अर्थ दोनों भय नहीं करते और न नष्ट होते हैं इसी प्रकार हे प्राण ! तू भी भय मत कर और नष्ट मत हो। लोकव्यवहार अनित्य होने पर भी प्रवाह से नष्ट नहीं होता।

यथा भूतं च भव्यं च न बिभीतो न रिष्यतः ।

एवा मे प्राण मा बिभेः ॥

अथर्व का० २ । सू० १६ । म० १-६ ॥

और जिस प्रकार भूतकाल और भविष्यत् काल दोनों भय नहीं करते और नष्ट नहीं होते इसी प्रकार हे मेरे प्राण ! तू भी भय मत कर।

—जयदेव शर्मा विद्यालंकार

रक्षा की प्रार्थना

प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं स्वाहा ॥

हे प्राण और अपान ! तुम दोनों मुझको शरीर के छूट जाने के भय से बचाओ, यह उत्तम प्रार्थना है।

द्यावापृथिवी उपश्रुत्या मा पातं स्वाहा ॥

हे द्यौ और पृथिवी ! मुझे श्रवण शक्ति द्वारा पालन करो। यह उत्तम प्रार्थना है।

सूर्य चक्षुषा मा पाहि स्वाहा ॥

हे सब के प्रकाशक सूर्य ! एवं उसके समान सब के प्रकाशक प्रभो ! मुझको दर्शन-इन्द्रिय के द्वारा पालन कर, इस प्रकार योगी अपने प्रभु को सम्बोधन करके शक्ति प्राप्त करे।

अग्ने वैश्वानर विश्वैर्मा देवैः पाहि स्वाहा ॥

हे प्रकाशमान ! हे समस्त शरीरों में व्यापक सबके नेता ईश्वर, और एवं जाठररूप में या घर २ में विद्यमान वैश्वानर अग्नि ! मुझको समस्त विद्वानों, दिव्य पदार्थों और इन्द्रियों द्वारा पालन कर। यह उत्तम प्रार्थना है अर्थात् ईश्वर हमारी इन्द्रियों की रक्षा करे।

विश्वम्भर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा ॥

अथर्ववेद कां० २। सू० १६ म० १-७ ॥

हे समस्त संसार के भरण पोषण करने हारे परमात्मन् ! मुझे समस्त पोषण शक्ति से पालन कर, ऐसी उत्तम प्रार्थना स्वयं करनी चाहिये।

आयुष्काम अर्थात दीर्घ आयु चाहने वाला पुरुष इस सूक्त का मनन किया करे।

—जयदेव शर्मा विद्यालंकार

कल्याण मार्ग

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥

सहृदयता मनका उत्तम भाव, निर्वैरता तुम्हारे लिये करता हूं। एक दूसरे के ऊपर ऐसी प्रीति करो, जैसी नवीन उत्पन्न बछड़े के ऊपर गौ करती है।

सहृदयता, उत्तम मन तथा निर्वैरता धारण करके परस्पर प्रेम भाव बढ़ाना चाहिये। इससे मनुष्य का कल्याण होगा।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शंतिवाम् ॥

लड़का पिता के अनुकूल कार्य करने वाला होकर माता के साथ उत्तम मन से रहने वाला होवे। पत्नी पति से मीठा और शांत भाषण बोले।

पुत्र पिता के अनुकूल कार्य करे और वह माता के साथ शुद्ध मन से व्यवहार करे। पत्नी पति के साथ शांत और मीठा भाषण करे ॥

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।
सम्यंचः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥

भ्राता भ्राता से द्वेष न करे। और बहिन के साथ भी द्वेष न करे। सब एकमत वाले और एक कर्म वाले होकर कल्याणी रीति से भाषण करें ॥

भाई-बहिन आपस में द्वेष न करें। कुटुम्ब-परिवार के सब लोग एक दिल से मिलजुल कर अपना व्यवहार करें।

येन देवा न वियंति नो च विद्विषते मिथः।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥

जिससे व्यवहार साधकों में विरोध नहीं होता, और परस्पर द्वेष नहीं होता वह उत्तम ज्ञान आपके घर में मनुष्यों के लिये करते हैं ॥

घर के सब लोगों में इस प्रकार का ज्ञान देना चाहिये, कि जिससे उन में कदापि विरोध न हो सके, और उनमें एक विचार सदा रहे ॥

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः
सधुराश्चरन्तः। अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत
सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि ॥

बड़ों का सम्मान करने वाले, विचारशील कार्य सिद्धि करने वाले, एक धुरा के नीचे होकर चलने वाले तुम लोग मत अलग होओ, आपस में विरोध न करो। एक दूसरे के साथ मनोहर भाषण करते हुए आगे बढ़ो। तुमको एक मार्ग से जाने वाले तथा उत्तम मनवाले करता हूं।

बड़ों का सम्मान करो, सोचकर कार्य करो, कार्य सिद्ध होने तक प्रयत्न करो, एक कार्य में दत्तचित्त होओ। आपस में विरोध और वैर न करो। परस्पर प्रेमपूर्वक भाषण करो। सबको ऐसा ज्ञान दो कि, जिससे सबमें शुद्ध मन हो।

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो
युनज्मि। सम्यंचोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥

आपका पान समान-एक ही हो, आप का भोजन भी एक

जैसा हो। तुमको मैं साथ एक जुए में जोड़ता हूं। सब मिलकर अग्नि की पूजा करो जिस प्रकार अरे नाभि के चारों ओर होते हैं।

आप सबका खान-पान का स्थान एक ही हो और सब मिल कर एक ही कार्य जोर से चलाओ। सब मिलकर ईश्वर पूजा करो और सबका बैठना भी एकत्र हो।

सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान्। देवा इवाऽमृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु॥

अथर्व० ३। ३०॥

उत्तम सेवा भाव से तुम सबको एक मार्ग से बढ़ाने वाले और उत्तम मनवाले एक खान पान वाले करता हूं। अमृत की रक्षा करने वाले देवों के समान सायं और प्रातः आपकी चित्त की प्रसन्नता होवे।

अपने अन्दर दूसरों की सहायता करने का भाव रखो, एक मार्ग से आगे बढ़ो, उत्तम सुसंस्कारसंपन्न मन बनाओ, आपस में एक खान-पान की व्यवस्था रखो। सर्वकाल मन की प्रसन्नता रखो, इससे अमृतपूर्ण सुख की प्राप्ति होगी।

—वेदशास्त्रज्ञ श्री स्वामी वेदानन्द तीर्थ

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।

—आर्यसमाज का तीसरा नियम